पूरा बेंच

ओ. चिन्नाप्पा रेड्डी, भोपिंडर सिंह ढिल्लों और हरबंस लाल, जे.जे के समक्ष

बिमला देवी-अपीलार्थी,

बनाम

सिंह राज, दसोंधी राम के पुत्र-प्रतिवादी।

1973 के आदेश संख्या 109-एम से पहली अपील

17 दिसंबर, 1976

हिंदू विवाह अधिनियम (1955 का XXV)-धारा 9,13 (1-ए) (ii) और 23 (1) (ए) -वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का पालन करने में विफल रहने वाला पति या पत्नी-क्या वह धारा 13 (1-ए) (ii) के तहत तलाक ले सकता है-ऐसा पति या पत्नी-चाहे वह अपनी गलती का फायदा उठा रहा हो।

अभिनिर्धारित किया गया कि यदि हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 की धारा 13 (1-क) में उल्लिखित सामग्री ऐसे मामले में संतुष्ट है जहां किसी भी पक्ष द्वारा वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की गई है, तो दूसरा पक्ष वैध रूप से विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विच्छेद के लिए आवेदन कर सकता है, इस तथ्य के बावजूद कि पति/पत्नी जिसके विरुद्ध डिक्री दी गई है वह उक्त डिक्री का पालन करने में विफल रहा है। यह आधार कि पति या पत्नी, जिनके विरुद्ध वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की गई थी, डिक्री का पालन करने में विफल रहा, इस आधार पर विवाह के विघटन की राहत से इनकार करने के लिए नहीं लिया जा सकता है कि पति या पत्नी अपने स्वयं के गलत का लाभ उठा रहे हैं। इस निष्कर्ष के बावजूद कि जिस पति या पत्नी के खिलाफ वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित की गई है, उसने निर्दिष्ट अवधि के लिए बिना किसी कारण के अधिनियम की धारा 9 के तहत याचिकाकर्ता की कंपनी को छोड़ दिया है, विधायिका ने उस पति या पत्नी को हकदार बनाने के लिए उचित समझा जिसके खिलाफ ऐसा निष्कर्ष दिया गया है अधिनियम की धारा 13-1 ए (ii) के तहत तलाक के लिए आवेदन करें और उक्त राहत को अधिनियम की धारा 23 (1) (ए) के प्रावधानों को लागू करके अस्तित्वहीन नहीं बनाया जा सकता है। एक चूक करने वाला पति या पत्नी, जिसे वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए एक डिक्री का सामना करना पड़ा है, को केवल इसलिए अपने स्वयं के गलत का लाभ उठाने के लिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि वह इस तरह के डिक्री का पालन करने में विफल रहा है।

(पैरा 6 और 14)

माननीय न्यायमूर्ति श्री आर. एस. नरूला और माननीय न्यायमूर्ति श्री बाल राज तुली की खंडपीठ द्वारा 25 फरवरी, 1974 को मामले में शामिल कानून के एक महत्वपूर्ण प्रश्न के निर्णय के लिए भेजा गया मामला। माननीय न्यायमूर्ति ओ. चिन्नाप्पा रेड्डी, माननीय न्यायमूर्ति भोपिंडर सिंह ढिल्लों और माननीय न्यायमूर्ति हरबंस लाल की पूर्ण पीठ ने अंततः दिसंबर, 1976 को मामले का फैसला सुनाया।

अपर जिला न्यायाधीश श्री के. एल. वैसन के न्यायालय के आदेश से पहली अपील। अंबाला ने 30 अगस्त, 1973 को याचिका को खारिज कर दिया और पक्षों को अपना खर्च वहन करने के लिए छोड़ दिया।

अपीलार्थी की ओर से अधिवक्ता योगेश्वर कुमार शर्मा के साथ अधिवक्ता जिनेन्द्र कुमार शर्मा।

प्रतिवादी की ओर से अधिवक्ता के. एस. सैनी।

<u>निर्णय</u>

न्यायालय का निर्णय इसके द्वारा दिया गया था -

बी. एस. ढिल्लन, न्यायमूर्ति

(1) यह F.A.O. चमन लाई बनाम मोहिंदर देवी 1971 पी.एल.आर. 104. में खंड पीठ के फैसले की शुद्धता पर सवाल उठाए जाने के कारण इसे प्रस्ताव पीठ द्वारा पूर्ण पीठ में स्वीकार कर लिया गया था। इस तरह यह अपील हमारे सामने रखी गई है।

(2) इस अपील को जन्म देने वाले आवश्यक तथ्यों को इस प्रकार कहा जा सकता हैः

सिंह राज, प्रतिवादी का विवाह श्रीमती से हुआ था। बिमला देवी 8 नवंबर, 1968 को गाँव भरेरी खुर्द, तहसील नारायणगढ़, जिला अंबाला में। शादी के बाद, पत्नी अपने पति के साथ केवल एक दिन के लिए गाँव सुरखपुर, तहसील थानेसर, जिला करनाल में रही और फिर अपने माता-पिता के घर लौट आई। पत्नी-अपीलार्थी के अनुसार, प्रत्यर्थी और उसके पिता द्वारा उसके माता-पिता के साथ की गई धोखाधड़ी के कारण उसके और प्रत्यर्थी के बीच विवाह संपन्न हुआ था। अपीलार्थी ने 3 जून, 1969 को हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसके बाद अधिनियम कहा जाता है) की धारा 12 के तहत एक याचिका दायर की, जिसे 2 मई, 1970 को विद्वत जिला न्यायाधीश, अंबाला द्वारा खारिज कर दिया गया था। सिंह राज प्रतिवादी ने इस आधार पर वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए एक याचिका दायर की कि पत्नी बिना किसी उचित कारण के अपनी सोसायटी से अलग हो गई। जवाब में, पत्नी ने यह रुख अपनाया कि विवाह धोखाधड़ी से संपन्न किया गया था और इस तरह पति वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का हकदार नहीं था। इस आवेदन को करनाल के अतिरिक्त जिला न्यायाधीश ने दिनांक 12 नवंबर, 1970 के आदेश के माध्यम से मंजूरी दी थी। दोनों आदेशों के खिलाफ पीड़ित; अपीलार्थी पत्नी ने तब अदालत के आदेशों को चुनौती देते हुए दो अपीलें दायर कीं। इस न्यायालय द्वारा दोनों अपीलों को 25 अक्टूबर, 1972 को खारिज कर दिया गया था। 21 दिसंबर, 1972 को अपीलार्थी-पत्नी ने तलाक के लिए डिक्री का दावा करते हुए अधिनियम की धारा 13 (1 ए) के तहत एक याचिका दायर की। उक्त याचिका को विद्वत अतिरिक्त जिला न्यायाधीश, अंबाला द्वारा दिनांक 30 अगस्त, 1973 के आदेश द्वारा खारिज कर दिया गया था। इस आदेश को इस अपील में चुनौती दी गई है। विद्वत न्यायाधीश इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि पत्नी पति की संगति में न रहने में अपनी गलती का लाभ उठाना चाहती है और इस प्रकार अधिनियम की धारा 23 के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए, वह उसके द्वारा दावा किए गए तलाक की डिक्री की राहत का हकदार नहीं थी।

(3) इस मामले का निर्णय करने के लिए, अधिनियम के प्रासंगिक प्रावधानों का संदर्भ दिया जा सकता है। अधिनियम की धारा 5 में यह प्रावधान है कि यदि उसमें उल्लिखित शर्तों को पूरा किया जाता है तो किसी भी दो हिंदुओं के बीच विवाह किया जा सकता है। धारा 9 निम्नलिखित शब्दों में हैः -

"9 (1) जब पति या पत्नी में से कोई भी, बिना किसी कारण के, दूसरे की सोसाइटी से वापस ले लिया है, तो पीड़ित पक्ष वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए जिला न्यायालय में याचिका दायर कर सकता है और अदालत, ऐसी याचिका में दिए गए बयानों की सच्चाई से संतुष्ट होने पर और यह कि आवेदन क्यों

नहीं दिया जाना चाहिए, कोई कानूनी आधार नहीं है, तदनुसार वैवाहिक अधिकारों की बहाली का आदेश दे सकता है।

(2) वैवाहिक अधिकारों की पुनर्स्थापना के लिए याचिका के उत्तर में कुछ भी अनुरोध नहीं किया जाएगा जो न्यायिक अलगाव या विवाह की निरर्थकता या तलाक के लिए आधार नहीं होगा। "

अधिनियम की धारा 10 के तहत, विवाह का कोई भी पक्ष, चाहे वह अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न हो, जिला न्यायालय में एक याचिका प्रस्तुत कर सकता है जिसमें उसमें उल्लिखित आधारों पर न्यायिक पृथक्करण की डिक्री के लिए अनुरोध किया जा सकता है। धारा 11 में विवाह को अमान्य घोषित करने का प्रावधान है, यदि यह धारा 5 के खंड (i) (iv) और (v) में निर्दिष्ट किसी भी शर्त का उल्लंघन करता है। धारा 12 अमान्य विवाहों से संबंधित है। धारा 13, इससे पहले संशोधन अधिनियम सं. 1964 का 44 इस प्रकार थाः -

“ 13 (1) इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न कोई भी विवाह, पति या पत्नी में से किसी एक द्वारा प्रस्तुत याचिका पर, इस आधार पर तलाक की डिक्री द्वारा भंग किया जा सकता है कि दूसरा पक्ष -

(i) व्यभिचार में रह रहा है; या

(ii) किसी अन्य धर्म में धर्मांतरण द्वारा हिंदू होना बंद कर दिया है; या

(iii) याचिका की प्रस्तुति से तुरंत पहले तीन साल से कम की निरंतर अवधि के लिए असाध्य रूप से अस्वस्थ दिमाग का है; या

(iv) याचिका की प्रस्तुति से ठीक पहले कम से कम तीन वर्षों की अवधि के लिए, कुष्ठ रोग के विषाक्त और लाइलाज रूप से पीड़ित है; या

(v) याचिका की प्रस्तुति से ठीक पहले कम से कम तीन वर्षों की अवधि के लिए, संचारी रूप में यौन रोग से पीड़ित है; या

(vi) किसी धार्मिक व्यवस्था में प्रवेश करके दुनिया का त्याग कर दिया है; या

(vii) उन व्यक्तियों द्वारा सात साल या उससे अधिक की अवधि के लिए जीवित होने के रूप में नहीं सुना गया है, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से इसके बारे में सुना होगा, अगर वह पक्ष जीवित होता; या

(viii) उस पक्ष के खिलाफ न्यायिक अलगाव के लिए डिक्री पारित करने के बाद दो साल या उससे अधिक के स्थान के लिए सहवास फिर से शुरू नहीं किया है; या

(ix) डिक्री के पारित होने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए कानूनी अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का पालन करने में विफल रहा है।

(2) एक पत्नी इस आधार पर तलाक की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए एक याचिका भी प्रस्तुत कर सकती है -

(i) इस अधिनियम के लागू होने से पूर्व संपन्न किए गए किसी विवाह की दशा में, कि पति ने ऐसे प्रारंभ से पूर्व पुनर्विवाह किया था या कि ऐसी शुरुआत से पूर्व विवाहित पति की कोई अन्य पत्नी याचिकाकर्ता के विवाह के संपन्न होने के समय जीवित थीः

बशर्ते कि किसी भी मामले में दूसरी पत्नी याचिका की प्रस्तुति के समय जीवित है; या

(ii) कि पति, विवाह की पुष्टि के बाद से, बलात्कार, व्यभिचार या पाशविकता का दोषी था। "

(4) 1964 में 1964 के अधिनियम संख्या 44 द्वारा, इस धारा का संशोधन किया गया था और उपधारा (1) के खंड (viii) और (ix) को हटा दिया गया था और इसके बजाय धारा 13 (1 क) जो निम्नलिखित शर्तों में है, को अंतःस्थापित किया गया थाः -

“13 (1 क) विवाह का कोई भी पक्ष, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न किया गया हो, इस आधार पर विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए याचिका भी प्रस्तुत कर सकता है -

(i) उस कार्यवाही में न्यायिक अलगाव के लिए डिक्री पारित करने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच सहवास की बहाली नहीं हुई है, जिसमें वे पक्षकार थे; या

(ii) कि विवाह के पक्षकारों के बीच दो वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए वैवाहिक अधिकारों की कोई बहाली नहीं हुई है, एक कार्यवाही में वैवाहिक अधिकारों के पुनर्स्थापन के लिए डिक्री पारित करने के बाद जिसमें वे पक्षकार थे।"

इस धारा को 1976 के अधिनियम संख्या 68 द्वारा और संशोधित किया गया था। इसलिए, संशोधित धारा 13 वर्तमान में निम्नलिखित शब्दों में हैः -

13 (1) इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न कोई विवाह, पति या पत्नी में से किसी एक द्वारा प्रस्तुत याचिका पर, इस आधार पर तलाक की डिक्री द्वारा भंग किया जा सकता है कि दूसरा पक्ष -

(i) विवाह संपन्न होने के बाद अपने पति या पत्नी के अलावा किसी अन्य व्यक्ति के साथ स्वैच्छिक यौन संबंध रखता है; या

(ia) विवाह सम्पन्न कर लेने के पश्चात् याचिकाकर्ता के साथ क्रूरता का व्यवहार किया है; या

(ib) याचिकाकर्ता को याचिका के प्रस्तुत होने से ठीक पहले कम से कम दो साल की निरंतर अवधि के लिए छोड़ दिया है; या

(ii) किसी अन्य धर्म में धर्मांतरण द्वारा हिंदू होना बंद कर दिया है; या

(iii) असाध्य रूप से अस्वस्थ दिमाग का रहा है, या इस तरह के मानसिक विकार से लगातार या बीच-बीच में पीड़ित रहा है और इस हद तक कि याचिकाकर्ता से प्रतिवादी के साथ रहने की उचित रूप से उम्मीद नहीं की जा सकती है।

स्पष्टीकरणः -इस खंड में -

(क)"मानसिक विकार" "पद का अर्थ है मानसिक बीमारी, अवरुद्ध या मन का अपूर्ण विकास मनोरोगी विकार या कोई अन्य विकार या मन की अक्षमता और इसमें सिज़ोफ्रेनिया शामिल है;

(ख) "मनोरोगी विकार" "पद का अर्थ है मन का एक निरंतर विकार या अक्षमता (चाहे बुद्धि की उप-सामान्यता सहित हो या नहीं) जिसके परिणामस्वरूप दूसरे पक्ष की ओर से असामान्य रूप से आक्रामक या गंभीर रूप से गैर-जिम्मेदाराना आचरण होता है, और क्या यह चिकित्सा उपचार की आवश्यकता है या नहीं; या

(iv) कुष्ठ रोग के विषाक्त और लाइलाज रूप से पीड़ित है; या

(v) सामुदायिक रूप में यौन रोग से पीड़ित है; या

(vi) किसी धार्मिक व्यवस्था में प्रवेश करके दुनिया का त्याग कर दिया है; या

(vii) उन व्यक्तियों द्वारा सात वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए जीवित होने के रूप में नहीं सुना गया है, जिन्होंने स्वाभाविक रूप से इसके बारे में सुना होगा यदि वह व्यक्ति जीवित होताः

स्पष्टीकरण. - इस उप-धारा में, "त्याग" शब्द का अर्थ है याचिकाकर्ता का दूसरे पक्ष द्वारा उचित कारण के बिना और सहमति के बिना या ऐसे पक्ष की इच्छा के खिलाफ विवाह के लिए त्याग, और इसमें दूसरे पक्ष द्वारा विवाह के लिए याचिकाकर्ता की जानबूझकर उपेक्षा शामिल है, और इसके व्याकरणिक परिवर्तनों और संज्ञानात्मक अभिव्यक्तियों का तदनुसार अर्थ लगाया जाएगा।

(1-क) विवाह का कोई भी पक्ष, चाहे वह इस अधिनियम के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न किया गया हो, इस आधार पर विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए याचिका भी प्रस्तुत कर सकता है -

(i) उस कार्यवाही में न्यायिक विभाजन के लिए डिक्री पारित करने के बाद एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच सहवास की बहाली नहीं हुई है, जिसमें वे पक्षकार थे; या

(ii) विवाह के पक्षकारों के बीच वैवाहिक अधिकारों की ऐसी कार्यवाही में, जिसमें वे पक्षकार थे, पुनर्स्थापन के लिए डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए कोई पुनर्स्थापना नहीं की गई है।

(2) एक पत्नी इस आधार पर तलाक की डिक्री द्वारा अपने विवाह के विघटन के लिए एक याचिका भी पेश कर सकती है -

(i) इस अधिनियम के लागू होने से पहले संपन्न किसी विवाह की दशा में, कि पति ने ऐसे प्रारंभ से पहले पुनर्विवाह किया था या कि ऐसे प्रारंभ से पहले विवाहित पति की कोई अन्य पत्नी याचिकाकर्ता के विवाह की पुष्टि के समय जीवित थीः बशर्ते कि किसी भी मामले में दूसरी पत्नी याचिका के प्रस्तुत होने के समय जीवित हो; या

(ii) कि पति, विवाह के समारोह के बाद से, बलात्कार, सोडोमी, या पाशविकता का दोषी है, या

(iii) कि हिंदू दत्तक ग्रहण और भरण-पोषण अधिनियम, 1956 (1956 का 78) की धारा 18 के अधीन किसी वाद में या दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 के अधीन किसी कार्यवाही में (या दंड प्रक्रिया संहिता, 1898 की तत्समान धारा 488 के अधीन) (1898 का 5), यथास्थिति, पति के विरुद्ध एक डिक्री या आदेश पारित किया गया है, जो पत्नी को भरण-पोषण प्रदान करता है कि वह अलग रह रही थी और ऐसी डिक्री या आदेश पारित होने के बाद से, संसदों के बीच सहवास एक वर्ष या उससे अधिक के लिए फिर से शुरू नहीं किया गया है; या

(iv) विवाह (चाहे वह संपन्न हो या न हो) पंद्रह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले संपन्न किया गया था और उसने उस आयु को प्राप्त करने के बाद लेकिन अठारह वर्ष की आयु प्राप्त करने से पहले विवाह को अस्वीकार कर दिया है।

स्पष्टीकरण-यह खंड लागू होता है कि विवाह , विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पहले या बाद में संपन्न किया गया था।

(13 क) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में, जहां तक याचिका धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (ii) (vi) (vii) में उल्लिखित आधारों पर स्थापित है, वहां तक को छोड़कर, विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह के विच्छेद के लिए याचिका पर न्यायालय, यदि वह मामले की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए ऐसा करना उचित समझता है तो न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री पारित कर सकता है।

(13 ख) (1) इस अधिनियम के उपबंधों के अधीन रहते हुए विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विच्छेद के लिए याचिका दोनों पक्षों द्वारा जिला न्यायालय में एक साथ विवाह के लिए प्रस्तुत की जा सकती है, चाहे ऐसा विवाह विवाह विधि (संशोधन) अधिनियम, 1976 के प्रारंभ से पूर्व या पश्चात् इस आधार पर संपन्न किया गया था कि वे एक वर्ष या अधिक की अवधि से पृथक रूप से रह रहे हैं, कि वे एक साथ रहने में सक्षम नहीं हैं और कि वे वास्तव में सहमत हुए हैं कि विवाह विघटित किया जाना चाहिए।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट याचिका प्रस्तुत किए जाने की तारीख के छः महीने से पहले और उक्त तारीख के अठारह महीने के बाद दोनों पक्षों के प्रस्ताव पर, यदि याचिका इस बीच वापस नहीं ली जाती है, तो न्यायालय पक्षों को सुनने के बाद और ऐसी जांच करने के बाद, जो वह उचित समझता है कि विवाह संपन्न हो गया है और याचिका में किए गए कथन सत्य हैं, संतुष्ट होने पर तलाक की डिक्री पारित करेगा, जिसमें डिक्री की तारीख से विवाह को भंग करने का निर्णय दिया जाएगा।"

(5) एकमात्र अन्य प्रासंगिक धारा धारा 23 है, जो, संशोधित रूप में, निम्नलिखित शब्दों में हैः -

23 (1) इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में, चाहे बचाव किया गया हो या नहीं, यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि -

(ए) राहत देने के लिए आधारों में से कोई भी मौजूद है और याचिकाकर्ता (उन मामलों को छोड़कर जहां धारा 5 के खंड (ii) के उपखंड (ए) उपखंड (बी) या उपखंड (सी) में निर्दिष्ट आधार पर उसके द्वारा राहत मांगी गई है) ऐसी राहत के उद्देश्य से किसी भी तरह से अपने स्वयं के गलत या विकलांगता का लाभ नहीं उठा रहा है; और

(ख) जहां याचिका का आधार धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (i) में विनिर्दिष्ट आधार है, याचिकाकर्ता ने किसी भी प्रकार से शिकायत किए गए कार्य या कार्यों के लिए सहायक या अभिनिर्धारित या क्षमा नहीं किया है, या जहां याचिका का आधार क्रूरता है, याचिकाकर्ता ने किसी भी तरह से क्रूरता को माफ नहीं किया है, और

(ख) जब आपसी सहमति के आधार पर तलाक की मांग की जाती है, तो ऐसी सहमति बल, धोखाधड़ी या अनुचित प्रभाव से प्राप्त नहीं की गई है; और

(ग) याचिका (धारा 11 के अधीन प्रस्तुत याचिका नहीं है) प्रत्यर्थी के साथ मिलीभुगत से प्रस्तुत नहीं की गई है या उस पर मुकदमा नहीं चलाया गया है; और

(घ) कार्यवाही प्रारम्भ करने में कोई अनावश्यक या अनुचित विलम्ब नहीं हुआ है; और

(ङ) कोई अन्य कानूनी आधार नहीं है कि राहत क्यों नहीं दी जानी चाहिए, और ऐसे मामले में, लेकिन अन्यथा नहीं, न्यायालय तदनुसार ऐसी राहत का आदेश देगा।

(2) इस अधिनियम के अधीन कोई राहत देने के लिए कार्यवाही करने से पहले, प्रत्येक मामले में जहां ऐसा संभव हो, पक्षकारों के बीच सुलह करने के लिए हर संभव प्रयास करना, प्रत्येक मामले में न्यायालय का कर्तव्य होगा।

परन्तु इस उपधारा में अंतर्विष्ट कुछ भी ऐसी किसी कार्यवाही पर लागू नहीं होगा जिसमें धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (ii) खंड (iii) खंड (iv) खंड (v) खंड (vi) या खंड (vii) में विनिर्दिष्ट आधारों में से किसी पर राहत मांगी गई है।

(3) ऐसे सुलह कराने में न्यायालय की सहायता करने के प्रयोजन के लिए, न्यायालय, यदि पक्षकार ऐसा चाहते हैं या यदि न्यायालय ऐसा करना उचित और उचित समझता है, तो कार्यवाही को पंद्रह दिनों से अधिक की उचित अवधि के लिए स्थगित कर सकता है और मामले को इस निमित्त पक्षकारों द्वारा नामित किसी व्यक्ति या न्यायालय द्वारा नामित किसी व्यक्ति को भेज सकता है, यदि पक्षकार किसी व्यक्ति का नाम लेने में विफल रहते हैं, इस बारे में न्यायालय को रिपोर्ट करने के निर्देश के साथ कि क्या सुलह हो सकती है और प्रभावी हो चुकी है और न्यायालय कार्यवाही के निपटान में रिपोर्ट को उचित सम्मान देगा।

(4) प्रत्येक मामले में जहां विवाह तलाक की डिक्री द्वारा भंग कर दिया जाता है, डिक्री पारित करने वाला न्यायालय प्रत्येक पक्ष को इसकी एक प्रति मुफ्त में देगा।

(23-क) तलाक या न्यायिक पृथक्करण या वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए किसी कार्यवाही में, प्रत्यर्थी न केवल याचिकाकर्ता के व्यभिचार, क्रूरता या इच्छा के आधार पर मांगी गई राहत का विरोध कर सकता है, बल्कि उस आधार पर इस अधिनियम के तहत किसी भी राहत के लिए जवाबी दावा भी कर सकता है और यदि याचिकाकर्ता का व्यभिचार, क्रूरता या त्याग साबित हो जाता है, तो अदालत प्रत्यर्थी को इस अधिनियम के तहत कोई राहत दे सकती है, जिसके लिए वह हकदार होता यदि उसने उस आधार पर ऐसी राहत की मांग करने वाली याचिका प्रस्तुत की होती। संसद द्वारा धारा 13 के प्रावधानों में किए गए विभिन्न संशोधनों से एक बात स्पष्ट है कि संसद ने उन पक्षों के बीच विवाह के विघटन को उदार बनाना उचित समझा, जहां पति-पत्नी के वैवाहिक संबंध जारी रखने की कोई संभावना नहीं है। जैसा कि ध्यान दिया जाएगा, धारा 13 ने आरंभ में, एक पक्ष को दूसरे पक्ष के विरुद्ध विवाह के विघटन के लिए

प्रस्ताव करने का अधिकार दिया, जिसके विरुद्ध धारा 13 में उल्लिखित आधार मौजूद थे। खंड (viii) के प्रावधानों को ध्यान में रखते हुए वह पक्ष जिसने दूसरे पक्ष के खिलाफ न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री की मांग की थी, केवल इस आधार पर तलाक के लिए आवेदन कर सकता है कि दूसरा पक्ष दो साल की अवधि के लिए सहवास फिर से शुरू नहीं कर सकता है। इसी तरह, केवल वह पक्ष जिसने वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की है, वह इस आधार पर तलाक के लिए आवेदन कर सकता है कि पक्ष डिक्री के पारित होने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए डिक्री का पालन करने में विफल रहा है। चूक करने वाला पक्ष जिसके खिलाफ न्यायिक पृथक्करण की डिक्री या वैवाहिक अधिकारों की बहाली की डिक्री पारित की गई थी, वह तलाक की डिक्री के लिए अदालत का रुख नहीं कर सकता था। 1964 के संशोधन द्वारा उपधारा (1) के दोनों खंडों (viii) और (ix) को धारा 13 से हटा दिया गया था और धारा 13 (1 क) को अंत:स्थापित किया गया था, जिसके आधार पर विवाह के किसी भी पक्ष को इस आधार पर विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विच्छेद के लिए याचिका प्रस्तुत करने का अधिकार दिया गया है कि न्यायिक अलगाव के लिए डिक्री के पारित होने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच सहवास की बहाली नहीं हुई है, जिसके लिए वे पक्षकार थे, या इस आधार पर कि विवाह के पक्षों के बीच वैवाहिक अधिकारों की बहाली नहीं हुई है, जैसा कि डिक्री के पारित होने के बाद दो साल की अवधि के लिए वैवाहिक अधिकारों की बहाली हुई है। अधिनियम सं. 1976 का 68, तलाक की डिक्री के आधारों को और उदार बनाया गया है। इस संशोधन से पहले के खंड (i) में, तलाक प्राप्त किया जा सकता था यदि दूसरा पति/पत्नी व्यभिचार में रह रहा था। इस खंड को खंड (i) (ia) और (ib) द्वारा प्रतिस्थापित किया गया है और तलाक के आधार, जैसा कि स्पष्ट है, को और उदार बनाया गया है। इसी प्रकार खंड (iii) को खंड (iii) को स्पष्टीकरण (क) और (ख) के साथ प्रतिस्थापित करके हटा दिया गया है। खंड (iv) और (v) में "याचिका प्रस्तुत करने से ठीक पहले कम से कम तीन वर्ष की अवधि के लिए" शब्दों को हटा दिया गया है। उपधारा (1 क) में "दो वर्ष" शब्दों के स्थान पर "एक वर्ष" शब्द रखे गए हैं। आगे यह देखा जाएगा कि धारा 13 ख को जोड़कर, एक और प्रावधान किया गया है कि तलाक की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए याचिका दोनों पक्षों द्वारा जिला न्यायालय में इस आधार पर प्रस्तुत की जा सकती है कि वे एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि से अलग रह रहे हैं और वे एक साथ रहने में सक्षम नहीं हैं और वे वास्तव में सहमत हुए हैं कि विवाह को भंग कर दिया जाना चाहिए। यदि यह सहमति छह महीने की अवधि के भीतर वापस नहीं ली जाती है और न्यायालय यह पाता है कि विवाह संपन्न हो गया है और याचिका में किए गए कथन सही हैं, तो न्यायालय को तलाक की डिक्री पारित करनी होगी, जिसमें विवाह को डिक्री की तारीख से भंग करने की घोषणा की जाएगी। इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि विधायिका की नीति उन विवाहों को उदारतापूर्वक भंग करने की रही है जहां विवाह के पक्ष एक साथ रहने में असमर्थ हैं।

अधिनियम की धारा 23 (1) (क) में यह उपबंध है कि यदि न्यायालय का समाधान हो जाता है कि राहत देने के लिए कोई आधार मौजूद है और याचिकाकर्ता किसी भी प्रकार से ऐसी राहत के प्रयोजन के लिए अपनी गलती या अक्षमता का लाभ नहीं उठा रहा है, तो वह ऐसी राहत का आदेश देगा। धारा की भाषा स्पष्ट है कि उसकी अपनी गलती या अक्षमता का लाभ उस राहत के संबंध में होना चाहिए जिसका दावा कार्यवाही में किया जाना चाहिए। राहत देने के लिए दावा किए जाने से पहले किसी अन्य कार्यवाही में अपने स्वयं के गलत या अक्षमता का कोई भी लाभ लिया गया था या खर्च किया गया था, जिसे अधिनियम की धारा 23 के तहत राहत से इनकार करने का आधार नहीं बनाया जा सकता है।

(6) वर्तमान में, हम एक ऐसे मामले से संबंधित हैं जहां प्रत्यर्थी-पति द्वारा अधिनियम की धारा 9 के तहत वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए एक डिक्री इस आधार पर प्राप्त की गई है कि पत्नी ने बिना किसी उचित बहाने के अपनी सोसाइटी से वापस ले लिया है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए कि पत्नी ने बिना

किसी उचित बहाने के पति की कंपनी छोड़ दी थी, पति को वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री दी गई थी। इस प्रकार यह देखा जाएगा कि यदि वह वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का पालन करने में विफल रही, तो यह नहीं कहा जा सकता है कि उसने अपने खिलाफ डिक्री पारित करने के बाद कोई गलत किया है। वास्तव में यह गलत जो उसने अधिनियम की धारा 9 के तहत कार्यवाही में किया था, उसे निर्णय पारित होने के बाद उसके द्वारा किया गया गलत नहीं कहा जा सकता है ताकि उसे अधिनियम की धारा 23 (1) (ए) के प्रावधानों के कारण धारा 13 (1 ए) के तहत राहत पाने से वंचित किया जा सके। धारा 23 (1) (ए) में उल्लिखित उसकी अपनी गलती या विकलांगता का बचाव उसकी अपनी गलती या विकलांगता का लाभ होना चाहिए, जिसकी नींव वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित होने के बाद रखी गई थी। यह व्याख्या का स्वीकृत नियम है कि एक अधिनियम के दो प्रावधानों को, जहां तक संभव हो, दोनों प्रावधानों को अर्थ देने के लिए सामंजस्यपूर्ण रूप से समझा जाना चाहिए। जैसा कि बताया गया है, विधायिका ने विभिन्न चरणों में धारा 13 में संशोधन करके तलाक के आधार को उदार बनाया। धारा 13 (1-क) को अधिनियमित करके विवाह के दोनों पक्षों को दिए गए आधारों पर विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विच्छेद का दावा करने का अधिकार दिया गया है। संशोधन से पहले, केवल एक पक्ष जिसने न्यायिक अलगाव या वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए याचिका दायर की थी, वह विवाह के विघटन के लिए आगे बढ़ सकता था। विधायिका ने यह परिवर्तन किया है और दोनों पक्षों को अधिकार दिया है, भले ही वैवाहिक अधिकारों के पुनर्स्थापन या विवाह के विघटन के लिए डिक्री दोनों पक्षों में से किसी एक द्वारा लागू की गई हो। मेरे विचार में, यदि धारा 13 (1-क) में उल्लिखित सामग्री ऐसे मामले में संतुष्ट है जहां किसी भी पक्ष द्वारा वैवाहिक अधिकारों के पुनर्स्थापन के लिए डिक्री प्राप्त की गई है, तो दूसरा पक्ष वैध रूप से तलाक की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन के लिए आवेदन कर सकता है, इस तथ्य के बावजूद कि पति/पत्नी जिसके खिलाफ डिक्री दी गई है वह उक्त डिक्री का पालन करने में विफल रहा है। यह आधार कि पति या पत्नी, जिनके विरुद्ध वैवाहिक अधिकारों के पुनर्स्थापन के लिए डिक्री प्राप्त की गई थी, डिक्री का पालन करने में विफल रहा, इस आधार पर विवाह के विघटन की राहत से इनकार करने के लिए नहीं लिया जा सकता है कि पति या पत्नी अपनी गलती का लाभ उठा रहे हैं। इस निष्कर्ष के बावजूद कि पति या पत्नी, जिसके खिलाफ वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित की गई है, ने निर्दिष्ट अवधि के लिए बिना किसी कारण के अधिनियम की धारा 9 के तहत याचिकाकर्ता की कंपनी को छोड़ दिया है, विधायिका ने उस पति या पत्नी को अधिनियम की धारा 13-1 ए (ii) के तहत तलाक के लिए आवेदन करने के लिए उपयुक्त माना है; उक्त राहत को अधिनियम की धारा 23 (1) (ए) के प्रावधानों को लागू करके गैर-अस्तित्व में नहीं बनाया जा सकता है। इस तरह की व्याख्या 1964 के संशोधन अधिनियम के उद्देश्य को ही विफल कर देगी।

(7) जो ऊपर कहा गया है, उससे यह प्रतीत होता है कि अधिनियम की धारा 23 (1) (क) के उपबंधों को, जहां विवाह के पक्षकारों के बीच उन कार्यवाहियों में, जिनमें वे पक्षकार थे, वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए वैवाहिक अधिकारों की बहाली नहीं हुई है, वहां वैवाहिक अधिकारों की बहाली की डिक्री का अनुपालन न करने के आधार पर अधिनियम की धारा 13 (1-क) (ii) के अधीन राहत को अस्वीकार करने के लिए लागू नहीं किया जा सकता है। प्रत्यर्थी के लिए विद्वत वकील का यह तर्क कि यदि धारा 23 (1) (क) के उपबंधों की व्याख्या ऊपर सुझाए गए तरीके से की जाती है, तो धारा 23 (1) (क) के उपबंध शून्य हो जाएंगे और किसी कार्यवाही पर लागू नहीं होंगे, बिना किसी गुण के है। जैसा कि देखा जाएगा, धारा 9 के तहत वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए, धारा 10 के तहत न्यायिक अलगाव के लिए, और अधिनियम की धारा 12 के तहत और इसलिए धारा 13 (1) के तहत भी धारा 23 के प्रावधान, जहां भी वे मामले के रिकॉर्ड पर साबित तथ्यों पर लागू होते हैं, को आकर्षित किया जाएगा। धारा 13 (1 क) के अधीन विवाह-विच्छेद की कार्यवाहियों में यह केवल सीमित सीमा तक है कि जहां किसी भी पक्षकार द्वारा इस आधार पर विवाह-

विच्छेद का दावा किया गया है कि न्यायिक पृथक्करण की डिक्री पारित किए जाने के पश्चात् सहवास की बहाली नहीं हुई है या कि वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित किए जाने के एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के पश्चात् वैवाहिक अधिकारों की बहाली नहीं हुई है, वहां उक्त उपबंधों को पारित डिक्री का अनुपालन न करने के आधार पर लागू नहीं किया जा सकता है ताकि यह अभिनिर्धारित किया जा सके कि उक्त गैर-अनुपालन कार्य किसी भी प्रकार से अपने स्वयं के गलत का लाभ उठा रहा है।

(8) दूसरी ओर, यदि अधिनियम की धारा 23 (1) (क) के उपबंध धारा 13-1 क (ii) के अधीन किसी याचिका पर इस आधार पर लागू होते हैं कि वह पक्षकार, जिसके विरुद्ध वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का अनुपालन करने में असफल रहने पर पारित की गई है, अपनी गलती का लाभ उठा रहा है, तो धारा 13 (1-क) के उपबंध निरर्थक सिद्ध होंगे, जिसकी व्याख्या नहीं की जा सकती। आगे यह ध्यान दिया जाएगा कि विधायिका ने वैवाहिक अधिकारों की बहाली की डिक्री के निष्पादन का तरीका प्रदान नहीं करना उचित समझा ताकि दोनों पति या पत्नी को शारीरिक रूप से एकजुट किया जा सके, जो किसी न किसी कारण से एक साथ नहीं रह सकते थे। डिक्री के केवल प्रतीकात्मक निष्पादन का प्रावधान किया गया है। इस संबंध में अधिनियम की धारा 28 के उपबंधों का निर्देश किया जा सकता है, जिसमें यह उपबंध किया गया है कि अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही में न्यायालय द्वारा किए गए फरमानों और आदेशों को उसी रीति से लागू किया जाएगा जिस रीति से न्यायालय की मूल सिविल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए किए गए फरमानों और आदेशों को लागू किया जाता है। सिविल प्रक्रिया संहिता के नियम 32 के आदेश 21, खंड (1) के प्रावधानों का संदर्भ दिया जा सकता है, जिसमें वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री के निष्पादन का तरीका प्रदान किया गया है। उक्त डिक्री को निर्णय-देनदार की संपत्ति की कुर्की द्वारा निष्पादित किया जा सकता है जो निष्पादन का एक प्रतीकात्मक तरीका है। सिविल प्रक्रिया संहिता में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके द्वारा पति या पत्नी की शारीरिक अभिरक्षा, जिसने डिक्री झेली है, उस पति या पत्नी को सौंपी जा सकती है जिसने वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की है। यह स्थिति होने के कारण, केवल इसलिए कि पति या पत्नी, जिसने डिक्री का सामना किया था, ने सहवास को फिर से शुरू करने से इनकार कर दिया, धारा 23 (1) (ए) के प्रावधानों को लागू करने का आधार नहीं होगा ताकि यह दलील दी जा सके कि उक्त पति या पत्नी अपनी गलती का लाभ उठा रहे हैं।

(9) इसलिए, हम यह अभिनिर्धारित करने के लिए इच्छुक हैं कि अधिनियम की धारा 13 (1-क) (ii) के अधीन आने वाले मामले में, दोनों में से कोई भी पक्ष विवाह विच्छेद की डिक्री द्वारा विवाह विच्छेद के लिए आवेदन कर सकता है, यदि वह यह दर्शाने में सक्षम है कि उन कार्यवाहियों में, जिनमें वे पक्षकार थे, वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित किए जाने के बाद एक वर्ष या उससे अधिक की अवधि के लिए विवाह के पक्षों के बीच वैवाहिक अधिकारों की कोई प्रतिपूर्ति नहीं हुई है। यह दलील कि जिस पक्षकार के विरुद्ध ऐसी डिक्री पारित की गई थी, वह डिक्री का पालन करने में विफल रहा या जिस पक्षकार के पक्ष में डिक्री पारित की गई थी, उसने डिक्री का पालन करने के लिए निश्चित कदम उठाए और चूक करने वाले पक्षकार ने डिक्री का पालन नहीं किया और इसलिए, ऐसा कार्य उस पक्षकार को उपलब्ध नहीं होगा, जो अधिनियम की धारा 13 की उपधारा (1-क) के खंड (i) के अधीन तलाक देने का विरोध कर रहा है। इसलिए, हम यह मानने के लिए इच्छुक हैं कि चमन लाल के मामले (ऊपर) में निर्धारित कानून कानून की सही स्थिति नहीं है और इसलिए उक्त प्राधिकरण अति-शासित है। यह निर्णय चमन लाल बनाम मोहिंदर देवी ,ए.आई. आर. 1968 पंजाब और हरियाणा 287, के रूप में रिपोर्ट किए गए विद्वान एकल न्यायाधीश (पी.सी. पंडित, न्यायमूर्ति) के फैसले के खिलाफ चमन लाल द्वारा दायर एल.पी.ए में खंडपीठ द्वारा किया गया था। विद्वत एकल न्यायाधीश द्वारा यह पाया गया कि पति ने पत्नी के कहने पर उसके विरुद्ध पारित वैवाहिक अधिकारों की बहाली की डिक्री का पालन करने का कोई प्रयास नहीं किया

है, तो उसे अपनी गलती का लाभ उठाने की अनुमति नहीं दी जा सकती है और इस प्रकार वह अधिनियम की धारा 13 (1-ए) के तहत तलाक का दावा करने का हकदार नहीं है। विद्वत न्यायाधीश ने अभिनिर्धारित किया कि यह पति का कर्तव्य था जिसने वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का सामना किया था कि वह उक्त डिक्री का पालन करने के लिए कदम उठाए और वह डिक्री के पारित होने के बाद दो साल तक वैवाहिक अधिकारों की बहाली से बचने का विकल्प नहीं चुन सकता था। हमारी राय में, विद्वान न्यायाधीश द्वारा दिया गया तर्क मान्य नहीं है।

उस पक्ष पर कानून द्वारा ऐसी कोई बाध्यता नहीं लगाई गई है, जिसे इस तरह की डिक्री का सामना करना पड़ा है क्योंकि उन पति-पत्नियों को शारीरिक रूप से एक साथ लाने का कोई प्रावधान नहीं किया गया है जो दोनों में से किसी की गलती के कारण अलग हो गए थे। यह अभिनिर्धारित करने के लिए कि डिक्री का सामना करने वाला व्यक्ति इसका पालन करने के लिए बाध्य है और यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है, तो धारा 23 (1) (ए) के प्रावधानों को इस आधार पर लागू किया जा सकता है, धारा 13 (1-ए) (ii) के प्रावधानों को निरर्थक बना देगा। यदि वह व्याख्या दी जाती है, तो प्रत्येक मामले में जहां वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री पारित की गई है, डिक्री का पालन करने के लिए पति/पत्नी पर कर्तव्य होने के कारण, ऐसा शायद ही कोई मामला हो सकता है जिसमें डिक्री का सामना करने वाले पक्षकार के कहने पर धारा 13 (1-ए) (ii) के प्रावधानों के तहत तलाक की डिक्री प्राप्त की जा सकती है। जैसा कि इंगित किया गया है, धारा 13 के प्रावधानों में संशोधन करके विधायिका की नीति तलाक को उदार बनाने के लिए प्रतीत होती है ताकि टूटे हुए विवाह भंग हो जाएं और विवाह के पक्षकार बंधनों से मुक्त हो जाएं क्योंकि वे मतभेदों को हल करने और एक साथ रहने के अवसर दिए जाने के बावजूद मतभेदों को हल करने और एक साथ रहने के अवसर दिए जाने के बावजूद एक साथ रहने में असमर्थ हैं। यह अच्छी तरह से हो सकता है कि पति या पत्नी, जिसने वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की है, अपना मन बदल सकता है और डिक्री के पारित होने के बाद दूसरे पति या पत्नी के साथ रहने के लिए तैयार नहीं हो सकता है। आगे यह देखा जाएगा कि एक पति या पत्नी जिसे वैवाहिक अधिकारों की बहाली की डिक्री का सामना करना पड़ा है, उसे पहले ही उचित बहाने के बिना दूसरे पति या पत्नी की कंपनी छोड़ने का निर्णय लिया जा चुका है। उक्त गलती वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री के पारित होने से बहुत पहले की गई थी और यह नहीं कहा जा सकता कि उक्त गलती वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री के पारित होने के बाद की गई है। इसके अलावा, पति या पत्नी से अलग रहने को गलत नहीं माना जा सकता है क्योंकि अधिनियम की धारा 23 (1) (ए) में "गलत" शब्द पर विचार किया गया है जो दूसरे पक्ष को कुछ नुकसान पहुंचाने पर विचार करता है। मामले के इस दृष्टिकोण में, विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय, जिसे हमारी राय में चमन लाल के मामले (ऊपर) में L.P.A में पुष्टि की गई थी, सही ढंग से नहीं किया गया है। इसी प्रकार, हमारे विचार में लक्ष्मीबाई लक्ष्मीचंद शाह बनाम लक्ष्मीचंद रवैल शाह ए.आई. आर. 1968 बम्बई 332. में बंबई उच्च न्यायालय का एकल पीठ का निर्णय विधि की सही स्थिति नहीं है।

(10) गुलाब कौर बनाम बलदेव सिंह, ए.आई. आर. 1963 पी.बी. 493. में इस न्यायालय का एकल पीठ का निर्णय अधिनियम की धारा 13 (1) (ix) के उपबंधों की व्याख्या करने वाला एक निर्णय है और इस प्रकार वर्तमान विवाद के लिए कोई प्रासंगिकता नहीं है। जैसा कि पहले कहा गया है, पूर्व-संशोधित धारा 13 (1) खंड (ix) के तहत वह व्यक्ति, जिसने वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की थी, केवल तलाक की डिक्री का दावा कर सकता था और दूसरे पति या पत्नी को अदालत में जाने का कोई अधिकार नहीं था। 1964 में और फिर 1976 में धारा 13 के संशोधन के बाद पूरे परिसर को बदल दिया गया है।

(11) कमला रानी बनाम राज कुमार में इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश का निर्णय भी सहायक नहीं है। उक्त मामले में विद्वत न्यायाधीश मुख्य रूप से मुद्दे की जिम्मेदारी के बारे में चिंतित था।

तथापि, हम यह देख सकते हैं कि विद्वत न्यायाधीश द्वारा गुलाब कौर बनाम बलदेव सिंह,1963 पी.एल.आर. 598. और किशनी बाई बनाम डॉ. भोला नाथ मामलों पर इस प्रस्ताव के लिए दी गई निर्भरता कि वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का अनुपालन निर्णय-देनदार द्वारा किया जाना है, सही कानूनी स्थिति नहीं है जैसा कि निर्णय के पूर्व भाग में हमारे द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है। इस न्यायालय के एक विद्वान एकल न्यायाधीश के दो अन्य निर्णय कृपाल सिंह बनाम तेज कौर और टेक चंद बनाम रक्षा वटी 1976 एच. एल. रिपोर्टर 725 कानून के प्रावधानों की गलत व्याख्या पर आधारित हैं और इसलिए हमारी राय है कि उक्त मामलों का सही निर्णय नहीं किया गया है।

(12) अब मनेपल्ली सूर्यकांतम बनाम मनेपल्ली रंगा राव, 1975 एच.एल.आर. 312 में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के निर्णय का संदर्भ दिया जा सकता है। उस मामले में यह अभिनिर्धारित किया गया था कि निष्पादन याचिका दायर नहीं करके वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री निष्पादित करने में पति या पत्नी की विफलता अधिनियम की धारा 13 (1-ए) (ii) के तहत विवाह को रद्द करने के लिए याचिका बनाए रखने के लिए एक बाधा नहीं है। विद्वत न्यायाधीशों ने अधिनियम की धारा 23 (1) (ए) और नियम 32, आदेश 21, सिविल प्रक्रिया संहिता के खंड (1) के प्रावधानों के दायरे पर विचार करने के बाद कहा कि उक्त प्रावधान अधिनियम की धारा 13 (1-ए) (ii) के प्रावधानों पर हावी नहीं हो सकते हैं और पति या पत्नी की ओर से कोई चूक या विफलता जो निष्पादन याचिका दायर करके इसे लागू करने के लिए वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त करती है, उसे तलाक की वैधानिक राहत की मांग करने से वंचित नहीं करेगी, अगर अधिनियम की धारा 13 (1-ए) के खंड (ii) में निर्दिष्ट आवश्यक शर्तें पूरी हो जाती हैं। यह प्राधिकरण कुछ हद तक उस दृष्टिकोण का समर्थन करता है जिसे हम वर्तमान सहजता में ले रहे हैं।

(13) जेठाभाई रतनशी लोदया बनाम मानाभाई जेठाभाई लोदया, 1975 एच.एल.आर.449 में बॉम्बे हाई कोर्ट के एक अन्य फैसले में, उनके आधिपत्य ने धारा 10(2), 13(1-ए) और 23(1)(ए) के दायरे पर विचार किया। यह एक ऐसा मामला था जहां परित्याग के आधार पर न्यायिक अलगाव के लिए एक डिक्री प्राप्त की गई थी। उक्त निर्णय की वर्तमान विवाद से कोई प्रासंगिकता नहीं है। इसी तरह, श्रीमती कैलाश कुमारी बनाम मनमोहा-एन कपूर, 1975 में जम्मू और कश्मीर उच्च न्यायालय के एक फैसले में, उनके आधिपत्य केवल मामले में शामिल मुद्दे की जांच की जिम्मेदारी से चिंतित थे।

(14) तथापि यह अवलोकन किया जा सकता है कि यह अभिनिर्धारित किया गया समझा नहीं जा सकता है कि धारा 13 (1-क) के उपबंध धारा 23 (1) (क) के उपबंधों के अधीन नहीं हैं। लेकिन, वास्तव में, हमने जो माना है वह यह है कि एक चूक करने वाला पति या पत्नी, जिसे वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए एक डिक्री का सामना करना पड़ा है, को केवल इसलिए अपने स्वयं के गलत का लाभ उठाने के लिए नहीं माना जा सकता है क्योंकि वह वैवाहिक अधिकारों की बहाली के डिक्री का पालन करने में विफल रहा है। मानवीय सरलता होने के कारण, इस बात पर विवाद नहीं किया जा सकता है कि कई मामले उत्पन्न हो सकते हैं, जहां तलाक के लिए आधार मौजूद होने के बावजूद, याचिकाकर्ता के आचरण में कुछ ऐसा हो सकता है जो इतना निंदनीय होगा कि न्यायालय ऐसे याचिकाकर्ता को तलाक के माध्यम से राहत देने से इस विचार पर इनकार कर देगा कि याचिकाकर्ता अपनी गलती का लाभ उठा रहा था।

(15) हमने जो दृष्टिकोण अपनाया है, उस पर हमारी सुविचारित राय है कि अपीलार्थी तलाक की डिक्री के माध्यम से विवाह के विघटन का हकदार है क्योंकि यह विवादित नहीं है कि धारा 13 (1 क) के खंड (ii) के अवयव पूरी तरह से संतुष्ट हैं क्योंकि दो वर्ष से अधिक की अवधि के लिए वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री के पारित होने के बाद विवाह के पक्षों के बीच वैवाहिक अधिकारों की कोई बहाली नहीं थी।

(16) यह स्पष्ट किया जा सकता है कि 1976 में अधिनियम में किए गए संशोधनों का विधानमंडल के इरादे को उजागर करने की दृष्टि से निर्णय में उल्लेख किया गया है क्योंकि वर्तमान मामले का निर्णय अधिनियम के प्रावधानों के आधार पर किया जाना है जैसा कि वे 1976 के संशोधन से पहले थे।

(17) तदनुसार अपील की अनुमति दी जाती है और अपीलार्थी को तलाक की डिक्री दी जाती है। हालांकि, लागत के बारे में कोई आदेश नहीं होगा।

ओ. चिन्नाप्पा रेड्डी, न्यायमूर्ति

(18) मैं ढिल्लों न्यायमूर्ति के इस निष्कर्ष से सहमत हूं कि अपील की अनुमति दी जानी चाहिए। आम तौर पर उनके तर्क की रूपरेखा से सहमत होते हुए भी मैं इसमें शामिल मुद्दों के महत्व को ध्यान में रखते हुए अपनी एक छोटी सी टिप्पणी जोड़ना चाहूंगा। विचार के लिए व्यापक प्रश्न यह है कि क्या एक पत्नी जो पति द्वारा प्राप्त वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए एक डिक्री का पालन करने में विफल रही है, वह हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 13 (1 ए) के तहत तलाक की मांग कर सकती है, भले ही धारा 23 (1) (ए) के प्रावधानों के बावजूद, जो एक याचिकाकर्ता को अधिनियम के तहत किसी भी कार्यवाही में राहत प्राप्त करने के उद्देश्य से अपने स्वयं के गलत या अयोग्यता का लाभ उठाने से वंचित करता है।

(19) हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 9 में यह उपबंध है कि एक व्यथित पति या पत्नी वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए आवेदन कर सकता है यदि विवाह का दूसरा पक्ष बिना किसी उचित कारण के अपने समाज से अलग हो गया है। इस तरह की निकासी, स्पष्ट रूप से, एक वैवाहिक गलत माना जाता है। धारा 10 विवाह के किसी भी पक्ष को इस आधार पर न्यायिक अलगाव की मांग करने में सक्षम बनाती है कि दूसरे पक्ष ने उसमें निर्दिष्ट वैवाहिक गलतियों में से एक या दूसरे को किया है या धारा में निर्दिष्ट अक्षमताओं में से एक या दूसरे को भुगतना पड़ा है। धारा 10 (2) में यह प्रावधान है कि यदि न्यायिक पृथक्करण के लिए डिक्री प्राप्त की जाती है तो याचिकाकर्ता के लिए प्रतिवादी के साथ सहवास करना अनिवार्य नहीं होगा। धारा 11 अमान्य विवाहों से संबंधित है और धारा 12 अमान्य विवाहों से संबंधित है और दोनों में अमान्यता की डिक्री का प्रावधान है। धारा 13 तलाक की डिक्री द्वारा विवाह के विघटन का प्रावधान करती है।

(20) 1964 से पहले, तलाक की मांग करने वाले पक्ष के लिए यह साबित करना आवश्यक था कि उसके पति या पत्नी ने धारा 13 में निर्दिष्ट वैवाहिक गलतियों में से एक या दूसरे को किया था या धारा 13 में निर्दिष्ट अक्षमताओं में से एक या दूसरे को भुगतना पड़ा था। खंड (vii) और (ix) ने तलाक के लिए दो आधार प्रस्तुत किए जो वैवाहिक गलतियों पर आधारित थे। वे चूक करने वाले पति या पत्नी की उस पक्ष के खिलाफ न्यायिक अलगाव के लिए डिक्री पारित होने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए सहवास फिर से शुरू करने में विफलता या डिक्री पारित होने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री का पालन करने में विफलता थी। चूंकि खंड (viii) और (ix) 1964 से पहले थे, केवल वह पक्ष जिसने न्यायिक अलगाव या वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए डिक्री प्राप्त की थी, निर्धारित अवधि की समाप्ति के बाद दूसरे पक्ष की निरंतर वैवाहिक गलती के आधार पर तलाक की मांग कर सकता था।

(21) 1964 में, एक क्रांतिकारी प्रस्थान हुआ। एक संशोधन अधिनियम द्वारा, खंड (viii) और (ix) को हटा दिया गया था और इसके बजाय, उपधारा (1 क) को धारा 13 में शामिल किया गया था। गैर-चूक पक्षकार

डिक्री धारक अकेले तलाक के लिए मुकदमा करने का हकदार होने के बजाय, धारा 13 (1 ए) में यह प्रावधान है कि कोई भी पक्ष इस आधार पर तलाक की मांग कर सकता है कि न्यायिक अलगाव के लिए डिक्री या वैवाहिक अधिकारों के लिए बहाली के लिए डिक्री पारित होने के बाद दो साल या उससे अधिक की अवधि के लिए सहवास की बहाली या वैवाहिक अधिकारों की बहाली नहीं हुई है। अब सवाल यह नहीं है कि वैवाहिक अधिकारों की बहाली या न्यायिक अलगाव के लिए डिक्री किसने प्राप्त की, या, पहले किसकी गलती थी या; अब किसकी गलती है? सवाल बिल्कुल भी गलती का नहीं है। सवाल दोष देने का नहीं है। सवाल यह है कि क्या डिक्री पारित होने के बाद पक्षकार एक साथ आने में सक्षम हुए हैं, क्या यह न्यायिक अलगाव के लिए था या वैवाहिक अधिकारों की बहाली के लिए था। यदि वे एक साथ नहीं आ पाए हैं, तो कोई भी पक्ष तलाक की मांग कर सकता है, चाहे वह किसकी गलती हो कि वे एक साथ नहीं आए। धारा 13 (1 क) में तलाक के आधार, धारा 13 (1) में तलाक के आधार के विपरीत, किसी वर्तमान वैवाहिक गलत या विकलांगता पर आधारित नहीं हैं।

(22) विधायी नीति स्पष्ट है। यह उन पक्षों के लिए तलाक को उदार और आसान बनाने के लिए है, जिनके विवाह टूट गए हैं, इस तथ्य से अप्राप्य रूप से प्रमाणित होता है कि निर्धारित अवधि के भीतर सहवास की बहाली या वैवाहिक अधिकारों की बहाली नहीं हुई है। 'यह न्यूनतम द्वेष और शत्रुता और अधिकतम मानवता के साथ मृत विवाह को भंग करने का आधार प्रदान करना है'।

(23) इस नीति के अनुरूप, हिंदू विवाह अधिनियम को 1976 में फिर से संशोधित किया गया, जिससे तलाक के आधार को और उदार बनाया गया। अन्य संशोधनों में, धारा 13 (1 ए) द्वारा निर्धारित अवधि को दो वर्ष से घटाकर एक वर्ष कर दिया गया है और एक नई धारा, धारा 13-बी पेश की गई है जिसमें आपसी सहमति से तलाक का प्रावधान किया गया है।

(24) अब, विचार के लिए प्रश्न यह है कि धारा 23 (1) (क) का क्या प्रभाव है, जो धारा 13 (1 क) पर अधिनियम के प्रारंभ से वैधानिक पुस्तक में है, जिसे 1964 में संशोधन के माध्यम से पेश किया गया था? इस प्रश्न पर निर्विवाद विधायी नीति और इरादे के आलोक में विचार किया जाना चाहिए। "कानून बनाने में प्रमुख उद्देश्य यह पता लगाना है कि विधायिका के इरादे को अधिनियम के कारण और आवश्यकता से एकत्र किया जाना है" और इरादे को प्रभावी बनाना है। पूछे जाने वाले प्रश्न हैं: संशोधन पेश किए जाने से पहले कानून क्या था? वह कौन सी शरारत या दोष था जिसके लिए कानून ने पहले प्रावधान नहीं किया था? संसद द्वारा नियुक्त उपाय क्या है और उपाय का कारण क्या है?

(25) 1964 से पहले, वैवाहिक अधिकारों की बहाली, न्यायिक अलगाव और तलाक के संबंध में अधिनियम की पूरी योजना गलत और विकलांगता की अवधारणाओं पर आधारित थी। न्यायालय का संबंध विवाह टूटने के तथ्य से नहीं था, बल्कि इस बात से था कि किसने गलत किया था या कौन विकलांगता से पीड़ित था। यह गलत-विकलांगता की अवधारणा के संदर्भ में था कि धारा 23 (1) (ए) में यह उपबंध किया गया था कि न्यायालय अधिनियम के अधीन राहत का आदेश केवल तभी देगा जब राहत देने के लिए कोई आधार मौजूद हो और याचिकाकर्ता किसी भी प्रकार से ऐसी राहत के प्रयोजन के लिए अपने स्वयं के गलत या विकलांगता का लाभ नहीं उठा रहा हो। गलत-विकलांगता की अवधारणा, जो अब तक अधिनियम के तहत राहत का एकमात्र आधार थी, ने अब, कुछ हद तक, गलत या विकलांगता के बावजूद टूटी हुई शादी की अवधारणा को रास्ता दिया है। मेरे विचार से धारा 23 (1) (क) के उपबंधों को लागू करना अनुज्ञेय नहीं है क्योंकि वे ऐसी कार्यवाही में, जिसमें धारा 13 (1 क) या धारा 13-ख के अधीन राहत का दावा किया जाता है, गलत अक्षमता की अवधारणा पर आधारित हैं क्योंकि वे खंडित विवाह की अवधारणा पर आधारित हैं। वास्तव में धारा 23 (1) (क) के उपबंधों को उस कार्यवाही पर लागू करना

असंभव है जिसमें धारा 13-ख के अधीन राहत का दावा किया गया है। यह दिखाने के लिए एक सूचक होना चाहिए कि धारा 23 (1) (ए) अधिनियम के तहत सभी कार्यवाहियों पर लागू होने के लिए नहीं है।

यहां तक कि अगर धारा 23 (1) (ए) को उन कार्यवाहियों पर लागू किया जाना है जिनमें धारा 13 (1 ए) के तहत राहत का दावा किया जाता है, तो भी धारा 23 (1) (ए) में निर्दिष्ट गलत या विकलांगता को केवल सहवास की गैर-स्वीकृति या केवल वैवाहिक अधिकारों की गैर-बहाली के अलावा गलत या विकलांगता माना जाना चाहिए, जो धारा 13 (1 ए) के तहत राहत का आधार बनती है। इस सवाल की जांच करना कि कौन था, सहवास को फिर से शुरू न करने या वैवाहिक अधिकारों की बहाली न करने के लिए जिम्मेदार था और इस आधार पर राहत से इनकार करना कि याचिकाकर्ता दोषी पक्ष था, 1964 के संशोधन के उद्देश्य को रद्द करना होगा। यह सत्य है कि यदि धारा 23 (1) (क) धारा 13 पर आधारित कार्यवाहियों पर लागू होती है।(1A). यह कल्पना करना मुश्किल है कि सहवास की बहाली या वैवाहिक अधिकारों की बहाली के अलावा और क्या गलत राहत को रोक सकता है। लेकिन वर्तमान में, ऐसी स्थिति पर विचार करने में विफलता न तो यहाँ है और न ही वहाँ, क्योंकि कोई भी भविष्य की सभी स्थितियों को पहले से नहीं रोक सकता है। प्रावधानों का अर्थ लगाने और विधायी आशय को प्रभावी बनाने का एकमात्र उचित तरीका यह कहना है कि धारा 23 (1) (ए) गलत-विकलांगता की अवधारणा पर आधारित मामलों पर लागू होती है न कि धारा 13 (1 ए) पर जो उस अवधारणा पर आधारित नहीं है। किसी भी दर पर, धारा 23 (1) (ए) द्वारा अनुध्यात गलत या अक्षमता सहवास की गैर-स्वीकृति या वैवाहिक अधिकारों की गैर-बहाली नहीं है जो धारा 13 (1 ए) का आधार है। इस दृष्टिकोण से अपील की अनुमति दी जानी चाहिए।

हरबंस लाल, न्यायमूर्ति - मैं ढिल्लों, न्यायमूर्ति से सहमत हूं ।

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्द्मेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।

रजत कुमार कनौजिया

प्रशिक्षु न्यायिक अधिकारी,

फ़रीदाबाद,हरियाणा